IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय समाज दर्शन में पुरुषार्थ विचार और मानव स्वरूपः शिक्षा की भूमिका के संदर्भ में

अनिता धाकड़
शोधार्थी
महर्षि दयानन्द सरस्वती विष्वविद्यालयए अजमेर।

भारत दर्शन जितना समृद्ध रहा है उतना ही समाजशास्त्र पर चिन्तन और उस पर किया गया विचार भी समृद्ध रहा है। भारतीय समाज दर्शन का आधार यदि खोजा जाए तो हम वैदिक चिंतन की ओर पहुँच जाते हैं। वैदिक काल के दर्शन और समाज चिंतन में पुरुषार्थ का विचार बड़ा महत्वपूर्ण रहा है। यहाँ पर यह कह देना प्रासंगिक होगा कि भारत में दार्शनिक चिंतन और समाज दर्शन अलग-अलग नहीं रहेए बल्कि दोनों एक साथ आगे बढ़े है इसलिए जो चिंतन दार्शनिक परम्पराओं में मिलता है उसका प्रभाव हमें भारत के सामाजिक जीवन में दिखाई देता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि समाज का आधार वे मूल्य रहे जिनको दर्शन ने स्वीकार किया इस प्रकार भारत में दर्शन समाज चिंतन एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया रही है।

प्राचीन भारत का पुरुषार्थ विचार न केवल दर्शन की दृष्टि से महत्व रखता है बल्कि समाज और मानव के व्यवहार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी रहा है यह तो हम सभी जानते हैं कि पुरुषार्थ चिंतन में धर्मए अर्थए काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ रहे हें इनका क्रम और महत्व समझने के लिए निम्नलिखित बिन्दु प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

1.पुरुषार्थ परम्परा में चार ही रहे है।
2.पुरुषार्थ में धर्म प्रथम पुरुषार्थ है और इसके बाद अर्थ और काम को पुरुषार्थ स्वीकार किया गया है तथा अन्त में मोक्ष को पुरुषार्थ माना गया है।
3.पुरुषार्थों का क्रम बदला नहीं जा सकता अर्थात् धर्म ही पुरुषार्थ रहेगा।
4.अर्थ और काम की साधना या प्राप्ति धर्म के ज्ञान के बाद आती है।
5.मोक्ष अन्तिम पुरुषार्थ है जो जीवन के किसी परम् लक्ष्य की ओर इषारा करता है।

ऊपर कहे गये बिन्दुओं के अनुसार यदि धर्म प्रथम पुरुषार्थ है तो इसका अर्थ है कि मनुष्य के लिए धर्म का आचरण अर्थात् अपने कर्तव्यों का पालन करना और इस कर्तव्य पालन की शिक्षा को आगे बढ़ाते रहना जीवन का प्रथम चरण होना चाहिए यहाँ धर्म का तात्पर्य पंथ या सम्प्रदाय से नहीं है धर्म का अर्थ है जो मनुष्य और समाज दोनों के लिए शुभकारी हो इस दृष्टि से मनुष्य का स्वयं के प्रति कर्तव्यए दूसरों के प्रति कर्तव्य और आपसी सामान्जस्य का विचार किया जाना आवष्यक है। धर्म का एक अर्थ उन सभी सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों से है जिनसे मानव जीवन श्रेष्ठ बनता है इन मूल्यों में सत्यए अहिंसाए करूणाए त्यागए न्यायए सद्भाव आदि को रखा जा सकता है दूसरी दृष्टि से देखा जाए तो धर्म उस औपचारिक शिक्षा का नाम भी है जिस :

1.मनुष्य अपने परिवार के संस्कारों से प्राप्त करता है।
2.मनुष्य विद्यालय जैसी संस्था में जाकर शिक्षा के माध्यम से ग्रहण करता है।
3.जीवन पर्यन्त चलने वाली सीखने की शिक्षा जिसमें व्यक्ति का कर्तव्य भी है।

इस प्रकार धर्म कहीं भी सम्प्रदाय या पंथ का नाम नहीं है जब धर्म को सम्प्रदाय या पथ से जोड़कर देखा जाता है तो परस्पर मतभेद विवाद और विषमताऐं पैदा होती है जैसे हम कह सकते हैं कि :

1.एक पंथ का दूसरे पंथ से विचार भेद हो सकता है।
2.एक सम्प्रदाय ही उपासना पद्धति दूसरे सम्प्रदाय ही उपासना पद्धति से अलग हो सकती है।
3.एक सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रंथ दूसरे सम्प्रदाय के ग्रंथों से अलग हो सकते है।
4.एक पंथ को मानने वाले लोगों के उपासना स्थल दूसरे पंथ से अलग हो सकते है।
5.एक पंथ के इष्ट या आराध्य दूसरे पंथ से अलग हो सकते है।

उपर्यक्त बिंदू यह समझने के लिए पर्याप्त है कि पंथ या सम्प्रदाय बहुत सीमित होते हैं उनका दायरा उपासना की पद्धति या स्थलों तक सीमित हो जाता है जबकि धर्म का विचार उन सार्वभौमिक मूल्यों की बात करता है जिनके आधार पर मनुष्य का मनुष्य के साथए मनुष्य का दूसरे जीव-जगत के साथ और मनुष्य का पूरी प्रकृति के साथ एक संबंध स्थापित होता है। प्राचीन भारत के समाज दर्शन में धर्म के इसी विचार को स्वीकार किया गया और इसी कारण धर्म प्रथम पुरुषार्थ बनता है अब यदि जिस समाज के चिन्तन में धर्म प्रथम पुरुषार्थ रहा होगा तो उसकी शिक्षा के निम्नलिखित लक्ष्य हो सकते हैं -

1.शिक्षा मनुष्य को उसका कर्तव्य बोध कराती है।
2.शिक्षा मनुष्य को परिवार व समुदाय के प्रति संवेदनषील बनाती है।
3.शिक्षा मनुष्य को समाज के प्रति सर्मपण का भाव सिखाती है।
4.शिक्षा मनुष्य को दूसरे जीव-जगत के प्रति सहिष्णुता और सद्भाव से जोड़ती है।

5.शिक्षा मनुष्य की प्रकृति से जुड़े उसके कर्तव्यों का बोध कराती है।

धर्म के इस विचार के साथ यदि अर्थ और काम के पुरुषार्थ पर चिन्तन किया जाए तो कहा जा सकता है कि अर्थ मनुष्य के लिए आर्थिक और भौतिक समृद्धि का साधन है अर्थ के विचार में निम्नलिखित बातें शामिल है जिनमें धर्म के आधार को स्वीकार करना पड़ेगाय

1.मनुष्य को नैतिक साधनों से ही अर्थ की प्राप्ति करनी चाहिए।

2.अर्थ की प्राप्ति में समाज के हितों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

3.जिस अर्थ प्राप्ति से दूसरों को नुकसान पहुँचता है या व्यवस्था में भ्रष्टाचार फैलता है उसे कभी आदर्श नहीं माना जा सकता।

4.अर्थ के अर्जन की कोई सीमा नहीं है। अतः मनुष्य को यह विचार करना होगा कि कब तक और कितना अर्थोपार्जन किया जाए।

5.अर्थ को यदि धर्म की स्थापना का साधन माना जाए तो इससे व्यक्ति और समाज दोनों को लाभ होगा।

इसी क्रम में काम के पुरुषार्थ को भी देखा जा सकता है जिसका संबंध में मूलतः मनुष्य की कामनाओं और इच्छाओं से है यद्यपि यह सामान्य विचार रहा है कि कामनाओं और इच्छाओं का कोई अंत नहीं है तो भी उनका पूरी तरह से दमन नहीं किया जा सकता इसलिए प्राचीन भारत के समाज दर्शन में अर्थ व काम को भी पुरुषार्थ माना गया ए काम पुरुषार्थ के संबंध में कुछ बातें संक्षेप में निम्नानुसार कही जा सकती है -

1.काम या इच्छा या जिसे हम कामना भी कह सते हैं यह आंतरिक भी हो सकती है और बाहरी भी हो सकती है।

2.दोनों ही इच्छाओं या कामनाओं की पूर्ति अर्थ के माध्यम से भी की जा सकती है।

3.काम या इच्छा को भी धर्म के अधीन होना चाहिए क्यों कि इससे मनुष्य की कामनाऐं एक दूसरे के विरोध में नहीं जाती है।

4.यदि कामना या इच्छा धर्म की सीमा लांघ जाती है तो समाज में बुराईयों और विषमताऐं फैलती है जिनका परिणाम व्यक्ति और समाज दोनों को ही भुगतना पड़ता है।

अब हम मोक्ष पर विचार करें तो भारत में लगभग सभी दर्शनों ने जीवन के अंतिम लक्ष्य के रूप में मोक्ष को स्वीकार किया है इससे यह तो माना जा सकता है कि भारत का दर्शन और समाज चिंतन एक ऐसे अंतिम लक्ष्य की बात करता है जहाँ मनुष्य के लिए अर्थ और काम का महत्व नहीं रहा जाताए मोक्ष की प्राप्ति अर्थ या काम से नहीं होती इसके लिए तो धर्म के मार्ग पर चलना होता है। अतः कहा जा सकता है कि धर्म मानव जीवन की पहली साधना है जिससे अर्थ और काम की पूर्ति की जा सकती है पर अन्ततः मनुष्य को मोक्ष के मार्ग की ओर ही जाना पड़ेगा।

भारतीय समाज दर्शन का पुरुषार्थ विचार शिक्षा की दृष्टि से किस प्रकार महत्वपूर्ण है इसके लिए निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं -

1.शिक्षा का एक बड़ा भाग धर्म के पुरुषार्थ पर आधारित है।

2.शिक्षा से मनुष्य अर्थ और काम की पूर्ति करता है और ऐसा करने में कोई बुराई भी नहीं है।

3.शिक्षा मनुष्य को यह समझ देती है कि वह अर्थ कमाने के लिए या इच्छापूर्ति के लिए गलत साधनों का प्रयोग नहीं करें।

4.शिक्षा का लक्ष्य मानव को कर्तव्य बोध कराना है और एक समझदार नागरिक बनाना भी है।

5.कर्तव्यबोध में स्वयं का स्वयं के लिए और स्वयं का दूसरों के लिए बोध होना जरूरी है।

सार रूप में कहा जा सकता है कि पुरुषार्थ का विचार भारत के समाज दर्शन का एक ऐसा योगदान है जो शिक्षा से समाज के उत्थान का मार्ग प्रषस्त करता है आज के युग में इस पुरुषार्थ के विचार को इसी रूप में समझे जाने की आवश्यकता है। अतः अध्यापकए शिक्षक-प्रशि
क्षकए नीति निर्माता तथा विद्वानों के लिए यह विषय और अधिक प्रासांगिक हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- दासगुप्तएएस0एन0ए ;2011). भारतीय दर्शन का इतिहासए भाग-1ए राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमीए जयपुर.
- कोयल श्री प्रमोद कुमारए ;1999).भारतीय दर्शनए नन्द किशोर देवराजए दिनकर दुबे प्रकाशन.
- महामहोपाध्यायए डा0 उमेश मिश्रए ;2003).भारतीय दर्शनए पाठक प्रकाशन. इलाहाबाद.उत्तर प्रदेष।
- महेलाए डा0 नरेन्द्र सिंहए ;2007). भारतीय दर्शन शब्द कोशए जैन प्रकाशन मन्दिर. इलाहाबाद.
- मेकेन्जीए जे0 एस0ए ;1962). समाज-दर्शन की रूपरेखाए रूपान्तरकारए डॉ0 अजीत कुमार सिन्हाए राजकमल प्रकाशनए नयी दिल्ली.
- मिश्रए डॉ0 हृदय नारायणए ;2009). समाज दर्शन-सैद्धांतिक एवं समस्यात्मक विवेचनए शेखर प्रकाशनए इलाहाबाद.
- सिंहए डा0 बद्रीनाथए ;2001).भारतीय दर्शन की रूपरेखाए आशा प्रकाशन. नई दिल्ली.
- शर्माए के. के.य शर्माए प्रभाय त्रिवेदीए सुधाय गर्गए ओ.पी.ए;2005).श्शिक्षा शब्द कोशश्श्ए स्वाती पब्लिकेशन्सए जयपुरए पृष्ठ.सं. 156ए 287